ISSN (ELECTRONIC): 2945-3135

Bablu kumar Jayswal (2026). *भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में वैचारिक ध्रुवीकरण और संस्थागत वर्चस्व: पुरुषोत्तम दास टंडन चुनाव (1950) एवं नेहरू-पटेल द्वैध शासन का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन International Journal of Multidisciplinary Research & Reviews, 5(3), 1-14.*

INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY RESEARCH & REVIEWS

journal homepage: www.ijmrr.online/index.php/home

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में वैचाररक ध्रुवीकरण और सांस्थागत वचचस्व: पुरुषोत्तम दास टांडन चुनाव **(1950)** एवां नेहरू-पटेल द्वैध शासन का एक ववश्लेषणात्मक अध्ययन

Dr. Bablu Kumar Jayswal

UGC-NET, B.ED-M.ED

Department of History, School Lecturer, Upgraded Higher Secondary School, Nawada, Saran Bihar, India.

Corresponding Author: bablujaiswal805@gmail.com

How to Cite the Article: Bablu kumar Jayswal (2026). *भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में वैचारिक ध्रुवीकरण और संस्थागत वर्चस्व: पुरुषोत्तम दास टंडन चुनाव (1950) एवं नेहरू-पटेल द्वैध शासन का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन International Journal of Multidisciplinary Research & Reviews, 5(3), 1-14.*

https://doi.org/10.56815/ijmrr.v5i3.2026.1-14

मुख्य शद्ब (Keywords)

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, नेहरू-पटेल द्वैध शासन, पुरुषोत्तम दास टंडन, आंतरिक लोकतंत्र, वैचारिक ध्रुवीकरण, सांगठनिक वर्चस्व, राजनीतिक संक्रमण।

सारांश (Abstract)

यह शोध पत्र स्वतंत्रता के तत्काल बाद भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के भीतर उभरे आंतरिक सत्ता-संघर्ष और वैचारिक ध्रुवीकरण का सूक्ष्म विश्लेषण करता है। शोध का केंद्रबिंदु 1950 का कांग्रेस अध्यक्षीय चुनाव है, जहाँ पुरुषोत्तम दास टंडन (पटेल समर्थित) और जे.बी. कृपलानी (नेहरू समर्थित) के बीच का मुकाबला मात्र दो व्यक्तियों की प्रतिद्वंद्विता नहीं, बल्कि दो भिन्न 'भारत दृष्टियों' का टकराव था।

अध्ययन यह रेखांकित करता है कि कैसे जवाहरलाल नेहरू की धर्मनिरपेक्ष-समाजवादी आधुनिकता और सरदार वल्लभभाई पटेल के यथार्थवादी-पारंपरिक राष्ट्रवाद ने पार्टी के भीतर एक 'द्वैध शासन' (Diarchy) जैसी स्थिति उत्पन्न कर दी थी। टंडन की जीत ने प्रारंभिक तौर पर पार्टी संगठन पर पटेल के सांगठनिक नियंत्रण को सिद्ध किया, किंतु पटेल के निधन के उपरांत नेहरू द्वारा टंडन को पद छोड़ने पर विवश करना, कांग्रेस के इतिहास में एक निर्णायक मोड़ साबित हुआ।

यह शोध तर्क देता है कि इस प्रकरण ने न केवल पार्टी के भीतर 'दक्षिणपंथी' प्रभाव को कमजोर किया, बल्कि भविष्य के लिए यह सिद्धांत भी स्थापित कर दिया कि

The work is licensed under a Creative Commons Attribution Non Commercial 4.0 International License

ISSN (ELECTRONIC): 2945-3135

Bablu kumar Jayswal (2026). *भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में वैचारिक ध्रुवीकरण और संस्थागत वर्चस्व: पुरुषोत्तम दास टंडन चुनाव (1950) एवं नेहरू-पटेल द्वैध शासन का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन International Journal of Multidisciplinary Research & Reviews, 5(3), 1-14.*

	लोकतांत्रिक ढांचे में प्रधानमंत्री का पद पार्टी अध्यक्ष के पद से अधिक प्रभावशाली होगा। अंततः, यह पत्र निष्कर्ष निकालता है कि टंडन का इस्तीफा और नेहरू का अध्यक्ष पद संभालना, कांग्रेस के 'सामूहिक नेतृत्व' के दौर के अंत और 'नेहरूवादी सर्वसम्मति' के युग के उदय का प्रतीक था।

प्रस्तावना

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का इतिहास मात्र एक राजनीतिक दल का इतिहास नहीं है, बल्कि यह आधुनिक भारत के निर्माण की वैचारिक जद्दोजहद का जीवंत दस्तावेज़ है। अगस्त 1947 में सत्ता के हस्तांतरण के पश्चात, कांग्रेस के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती 'आंदोलन' से 'शासकीय दल' (Party of Governance) में रूपांतरित होने की थी। इस संक्रमण काल में पार्टी के भीतर सत्ता के दो स्पष्ट ध्रुव उभरे जवाहरलाल नेहरू और सरदार वल्लभभाई पटेल। इन दोनों दिग्गजों के बीच का संबंध भारतीय राजनीति में 'द्वैध शासन' (Diarchy) के एक अनूठे प्रयोग के रूप में देखा जाता है, जहाँ एक ओर नेहरू की 'करिश्माई जन-अपील' थी, तो दूसरी ओर पटेल का 'अभेद्य सांगठनिक नियंत्रण' था (Brecher, 1959)।

वैचारिक द्वैतवाद की पृष्ठभूमि: स्वतंत्रता के प्रारंभिक वर्षों में कांग्रेस कोई एकरूपी संगठन नहीं थी, बल्कि यह विभिन्न विचारधाराओं का एक 'छतरी संगठन' (Umbrella Organization) था। नेहरू जहाँ फेबियन समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता और अंतरराष्ट्रीयतावाद के प्रबल समर्थक थे, वहीं सरदार पटेल एक यथार्थवादी राष्ट्रवादी थे, जो हिंदू भावनाओं, निजी संपत्ति के अधिकारों और प्रशासनिक स्थिरता के प्रति अधिक संवेदनशील थे (Gandhi, R., 1991)। विद्वान माइकल ब्रेचर के अनुसार, "नेहरू और पटेल के बीच का संघर्ष केवल व्यक्तित्वों का टकराव नहीं था, बल्कि यह भारत की आत्मा के लिए दो भिन्न दृष्टिकोणों का संघर्ष था→ (Brecher, 1959, p. 391)।

संस्थागत वर्चस्व और अध्यक्षीय पद का विवाद: प्रस्तावित शोध का मुख्य केंद्रबिंदु 1950 का पुरुषोत्तम दास टंडन बनाम जे.बी. कृपलानी का निर्वाचन है। यह निर्वाचन उस समय हुआ जब कांग्रेस के भीतर 'संगठन' और 'सरकार' के बीच सर्वोच्चता को लेकर बहस छिड़ी हुई थी। स्टैनली कोचानेक (1968) तर्क देते हैं कि कांग्रेस के भीतर यह विवाद आचार्य कृपलानी के इस्तीफे (1947) से ही शुरू हो गया था, जब उन्होंने शिकायत की थी कि प्रधानमंत्री नेहरू और गृह मंत्री पटेल महत्वपूर्ण निर्णयों में पार्टी अध्यक्ष को विश्वास में नहीं ले रहे हैं। टंडन का उदय इस असंतोष की चरम परिणति थी।

टंडन प्रकरण: एक वैचारिक युद्धक्षेत्र

पुरुषोत्तम दास टंडन, जिन्हें 'राजर्षि' कहा जाता था, अपनी हिंदूवादी छवि और शरणार्थी समस्या पर कड़े रुख के लिए जाने जाते थे। उनका चयन सरदार पटेल की सांगठनिक शक्ति का प्रदर्शन था। नेहरू ने टंडन की उम्मीदवारी का कड़ा विरोध करते हुए इसे "सांप्रदायिकता और प्रतिक्रियावाद की जीत→ करार दिया था (Nehru, Selected Works, Vol. 15)। दुर्गा दास (1969) के अनुसार, यह चुनाव नेहरू के नेतृत्व पर एक तरह का 'अविश्वास प्रस्ताव' था, क्योंकि टंडन की जीत का अर्थ था कि पार्टी की मशीनरी अभी भी पटेल के दक्षिणपंथी रुझान वाले गुट के नियंत्रण में थी।

शोध का औचित्य और उद्देश्य

The work is licensed under a Creative Commons Attribution Non Commercial 4.0 International License

ISSN (ELECTRONIC): 2945-3135

Bablu kumar Jayswal (2026). *भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में वैचारिक ध्रुवीकरण और संस्थागत वर्चस्व: पुरुषोत्तम दास टंडन चुनाव (1950) एवं नेहरू-पटेल द्वैध शासन का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन International Journal of Multidisciplinary Research & Reviews, 5(3), 1-14.*

यह प्रस्तावना इस महत्वपूर्ण प्रश्न को उठाती है कि कैसे एक लोकतांत्रिक दल के भीतर दो शीर्ष नेताओं का 'वर्चस्व' संस्थागत कार्यप्रणाली को प्रभावित करता है। पटेल के निधन (दिसंबर 1950) के बाद टंडन का अकेला पड़ जाना और अंततः 1951 में नेहरू द्वारा दबाव बनाकर उनसे इस्तीफा लेना, भारतीय राजनीति में 'प्रधानमंत्री की सर्वोच्चता' के सिद्धांत की स्थापना थी। यह शोध पत्र इस ऐतिहासिक मोड़ का विश्लेषण करेगा कि कैसे इस घटनाक्रम ने कांग्रेस के 'आंतरिक लोकतंत्र' की प्रकृति को स्थायी रूप से बदल दिया।

वैचारिक ध्रुवीकरण के मुख्य बिंदु

स्वतंत्रता के पश्चात कांग्रेस के भीतर वैचारिक ध्रुवीकरण केवल व्यक्तिगत सत्ता संघर्ष नहीं था, बल्कि यह 'राष्ट्र-निर्माण' की दो भिन्न पद्धतियों का टकराव था। नेहरू एक आधुनिक, धर्मनिरपेक्ष और समाजवादी भारत के पैरोकार थे, जबकि पटेल और टंडन का समूह सांस्कृतिक मूल्यों, यथार्थवादी राष्ट्रवाद और प्रशासनिक निरंतरता को प्राथमिकता देता था (Gopal, 1979)।

- **हिंदू कोड बिल और सामाजिक सुधार:** वैचारिक टकराव का एक बड़ा केंद्र हिंदू कोड बिल था। नेहरू इसे भारतीय समाज के आधुनिकीकरण और महिलाओं के अधिकारों के लिए अपरिहार्य मानते थे। इसके विपरीत, पुरुषोत्तम दास टंडन और उनके समर्थकों का मानना था कि राज्य को हिंदू परंपराओं में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, विशेषकर तब जब अन्य समुदायों के व्यक्तिगत कानूनों को छुआ नहीं जा रहा था (Austin, 1999)।टंडन ने इसे "हिंदू संस्कृति पर प्रहार" के रूप में देखा, जिससे पार्टी के भीतर रूढ़िवादी और प्रगतिशील गुटों के बीच गहरी खाई पैदा हो गई।
- **शरणार्थी समस्या और पाकिस्तान के प्रति दृष्टिकोण:** विभाजन के बाद शरणार्थियों के पुनर्वास और पाकिस्तान के प्रति नीति पर दोनों गुटों में गंभीर मतभेद थे। नेहरू 'दिल्ली समझौते' (लियाकत-नेहरू पैक्ट, 1950) के माध्यम से अल्पसंख्यकों की सुरक्षा सुनिश्चित करना चाहते थे। वहीं, टंडन और पटेल का मानना था कि पाकिस्तान के साथ अधिक कड़ाई से पेश आना चाहिए। टंडन ने शरणार्थियों के प्रति नेहरू सरकार की नीति को 'दुर्बल' और 'तुष्टिकरण' से प्रेरित बताया था (Das, 1969)।यह ध्रुवीकरण इतना तीव्र था कि नेहरू ने इसे 'सांप्रदायिकता बनाम धर्मनिरपेक्षता' की लड़ाई बना दिया।
- **आर्थिक नीतियां: समाजवाद बनाम पूंजीवाद**

नेहरू का झुकाव सोवियत संघ की तर्ज पर 'नियोजित अर्थव्यवस्था' और भारी उद्योगों की ओर था। इसके विपरीत, पटेल और उनके गुट (जिसमें टंडन भी शामिल थे) निजी संपत्ति के अधिकारों के रक्षक थे और वे गांधीवादी ग्रामोद्योग व व्यापारियों के हितों के प्रति अधिक उदार थे (Kochanek, 1968)।

वैचारिक तुलनात्मक चार्ट (Comparative Analysis)

नीचे दिया गया चार्ट नेहरू और पटेल/टंडन गुट के बीच के मुख्य वैचारिक अंतरों को स्पष्ट करता है:

वैचारिक आयाम	नेहरूवादी दृष्टिकोण (प्रगतिशील गुट)	पटेल-टंडन दृष्टिकोण (पारंपरिक राष्ट्रवाद)
धर्मनिरपेक्षता	राज्य और धर्म का पूर्ण पृथक्करण (Secularism)	सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और परंपराओं का सम्मान
सामाजिक सुधार	हिंदू कोड बिल के माध्यम से तीव्र आधुनिकीकरण	धार्मिक परंपराओं में हस्तक्षेप का विरोध

The work is licensed under a Creative Commons Attribution Non Commercial 4.0 International License

Bablu kumar Jayswal (2026). *भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में वैचारिक ध्रुवीकरण और संस्थागत वर्चस्व: पुरुषोत्तम दास टंडन चुनाव (1950) एवं नेहरू-पटेल द्वैध शासन का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन International Journal of Multidisciplinary Research & Reviews, 5(3), 1-14.*

वैचारिक आयाम	नेहरूवादी दृष्टिकोण (प्रगतिशील गुट)	पटेल-टंडन दृष्टिकोण (पारंपरिक राष्ट्रवाद)
विदेश नीति	गुटनिरपेक्षता और अंतरराष्ट्रीय आदर्शवाद	राष्ट्रीय हित आधारित यथार्थवाद (Realism)
अर्थव्यवस्था	राज्य-नियंत्रित समाजवाद और भारी उद्योग	निजी उद्यम और गांधीवादी विकेंद्रीकरण
पाकिस्तान नीति	कूटनीतिक संवाद और सह-अस्तित्व	'जैसे को तैसा' और सख्त रुख

- **भाषाई राष्ट्रवाद और सांस्कृतिक अस्मिता:** पुरुषोत्तम दास टंडन हिंदी के कट्टर समर्थक थे और 'हिंदी साहित्य सम्मेलन' के माध्यम से उन्होंने हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए तीव्र आंदोलन चलाया था। नेहरू, जो एक साझी संस्कृति (Hindustani) के हिमायती थे, टंडन की इस 'उग्र-हिंदी' समर्थक छवि को गैर-हिंदी भाषी क्षेत्रों के लिए खतरा मानते थे (Brass, 1990)।यह भाषाई विवाद भी 1950 के चुनाव में एक बड़ा कारक बना।
- **संगठनात्मक संरचना पर वर्चस्व:** यह ध्रुवीकरण केवल विचारों तक सीमित नहीं था, बल्कि 'संस्थागत वर्चस्व' के लिए भी था। पटेल का मानना था कि कांग्रेस संगठन को सरकार पर नियंत्रण रखना चाहिए ताकि मंत्रियों की जवाबदेही बनी रहे। नेहरू इसके विपरीत 'प्रधानमंत्री की विशेषाधिकार शक्ति' के पक्षधर थे। टंडन का चुनाव इसी 'संगठन बनाम सरकार' के संघर्ष की चरम सीमा थी (Chandra, 1999)।

पुरुषोत्तम दास टंडन का निर्वाचन: एक केस स्टडी

निर्वाचन की वैचारिक और राजनीतिक पृष्ठभूमि: एक अपरिहार्य टकराव

1950 का कांग्रेस अध्यक्षीय निर्वाचन भारतीय राजनीतिक इतिहास की कोई साधारण घटना नहीं थी; यह स्वतंत्र भारत के प्रथम 'पार्टी-राज्य' (Party-State) के भीतर वैचारिक सर्वोच्चता स्थापित करने का एक सोचा-समझा प्रयास था। इस निर्वाचन की पृष्ठभूमि में तीन प्रमुख कारक कार्य कर रहे थे, जिन्होंने इसे एक गहन 'केस स्टडी' का रूप दिया।

संगठन बनाम कार्यकारी का पुराना विवाद: कांग्रेस के भीतर यह द्वंद्व 1947 में आचार्य कृपलानी के इस्तीफे के साथ ही प्रारंभ हो गया था। प्रश्न यह था कि: *क्या प्रधानमंत्री और उनकी कैबिनेट को स्वतंत्र रूप से निर्णय लेने चाहिए, या उन्हें कांग्रेस कार्यसमिति (CWC) के निर्देशों का पालन करना चाहिए?* (Kochanek, 1968)।सरदार पटेल का मानना था कि पार्टी संगठन सरकार की नीतियों का 'वाचडॉग' होना चाहिए। जब पुरुषोत्तम दास टंडन ने अध्यक्ष पद के लिए अपनी दावेदारी पेश की, तो वे अनिवार्य रूप से पटेल के इसी 'संगठन-सर्वोच्चता' के सिद्धांत के ध्वजवाहक बनकर उभरे (Brecher, 1959)।

'राजर्षि' टंडन: एक ध्रुवीकरण करने वाला व्यक्तित्व: पुरुषोत्तम दास टंडन केवल एक राजनेता नहीं थे, बल्कि वे हिंदी, हिंदू संस्कृति और भारत के विभाजन के बाद उभरे आक्रोश के प्रतीक थे। पॉल ब्रास (1990) के अनुसार, टंडन का व्यक्तित्व नेहरूवादी 'कॉस्मोपॉलिटन' छवि के ठीक विपरीत था। वे शरणार्थियों के पुनर्वास के लिए पाकिस्तान के प्रति सख्त नीति के हिमायती थे और नेहरू के 'सेकुलर प्रयोगों' के मुखर

The work is licensed under a Creative Commons Attribution Non Commercial 4.0 International License

Bablu kumar Jayswal (2026). *भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में वैचारिक ध्रुवीकरण और संस्थागत वर्चस्व: पुरुषोत्तम दास टंडन चुनाव (1950) एवं नेहरू-पटेल द्वैध शासन का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन International Journal of Multidisciplinary Research & Reviews, 5(3), 1-14.*

आलोचक थे। नेहरू के लिए टंडन की उम्मीदवारी केवल एक राजनीतिक चुनौती नहीं, बल्कि उन मूल्यों के लिए खतरा थी जिनके आधार पर वे आधुनिक भारत की नींव रख रहे थे (Gopal, 1979)।

पटेल का 'साइलेंट' समर्थन और नेहरू की चेतावनी: यद्यपि सरदार पटेल ने सार्वजनिक रूप से टंडन के लिए प्रचार नहीं किया, लेकिन कांग्रेस के प्रांतीय ढांचे पर उनकी पकड़ ने यह स्पष्ट कर दिया कि टंडन को उनका मौन आशीर्वाद प्राप्त है। नेहरू ने इस खतरे को भांपते हुए पटेल को लिखे अपने प्रसिद्ध पत्र (अगस्त 1950) में कहा था: *"टंडन की जीत का मतलब होगा कांग्रेस का उन शक्तियों के हाथों में चले जाना जिनसे हम लड़ रहे हैं... ऐसी स्थिति में मेरा प्रधानमंत्री बने रहना कठिन होगा→* (Nehru, Selected Works, Vol. 15)।

प्रमुख बिंदुओं का सारांश (विश्लेषणात्मक तालिका)

पृष्ठभूमि कारक	नेहरू का पक्ष	पटेल/टंडन का पक्ष
सर्वोच्चता का केंद्र	प्रधानमंत्री और संसद	कांग्रेस कार्यसमिति (CWC)
सांस्कृतिक दृष्टि	मिली-जुली संस्कृति (Hindustani)	शुद्ध हिंदी और भारतीय परंपरा (Sanskritic)
रणनीतिक लक्ष्य	आधुनिक, धर्मनिरपेक्ष राज्य का निर्माण	ऐतिहासिक मूल्यों पर आधारित राष्ट्रवाद

चुनावी प्रक्रिया, गुटबाजी और परिणाम: सांगठनिक मशीनरी का शक्ति प्रदर्शन

1950 का कांग्रेस अध्यक्षीय चुनाव भारतीय लोकतांत्रिक प्रक्रिया के भीतर 'गुटीय राजनीति' (Factional Politics) का चरम बिंदु था। इस चुनाव ने यह स्पष्ट कर दिया कि कांग्रेस के भीतर वैचारिक मतभेद केवल बहस तक सीमित नहीं थे, बल्कि वे पार्टी के जमीनी ढांचे (Grassroots Structure) तक गहरे धंसे हुए थे।

गुटबाजी का स्वरूप और लामबंदी: चुनावी मैदान में मुख्य रूप से दो शक्तिशाली गुट सक्रिय थे। एक ओर **सरदार पटेल** के वफादार थे, जिन्होंने पुरुषोत्तम दास टंडन को 'सांगठनिक अनुशासन' के प्रतीक के रूप में पेश किया। दूसरी ओर नेहरू के समर्थक और पूर्व समाजवादी गुट के लोग थे, जिन्होंने आचार्य कृपलानी को 'धर्मनिरपेक्षता और प्रगतिशीलता' के ध्वजवाहक के रूप में खड़ा किया।

स्टैनली कोचानेक के अनुसार, पटेल ने अपनी पकड़ मजबूत करने के लिए प्रदेश कांग्रेस कमेटियों (PCCs) का प्रभावी उपयोग किया। उत्तर प्रदेश, बिहार और मध्य प्रांत की इकाइयों में टंडन का आधार अत्यंत मजबूत था, क्योंकि वे स्थानीय नेताओं और हिंदू शरणार्थियों के मुद्दों से सीधे जुड़े थे (Kochanek, 1968)। इसके विपरीत, कृपलानी का अभियान मुख्य रूप से नेहरू की 'नैतिक अपील' पर टिका था।

मतदान प्रक्रिया और सत्ता का विकेंद्रीकरण: 29 अगस्त 1950 को हुए मतदान में देश भर के लगभग 3,000 कांग्रेस प्रतिनिधियों (Delegates) ने हिस्सा लिया। यह चुनाव गुप्त मतदान के माध्यम से हुआ, जिससे पार्टी के भीतर के आंतरिक असंतोष को खुलकर सामने आने का अवसर मिला। नेहरू ने चुनाव प्रचार के दौरान बार-बार यह संकेत दिया कि टंडन की जीत उनकी अपनी नीतियों के लिए एक गंभीर संकट होगी। इस 'नैतिक दबाव' के बावजूद, पार्टी संगठन ने अपनी स्वायत्तता बनाए रखने का प्रयास किया।

चुनावी परिणाम: आंकड़ों का विश्लेषण

The work is licensed under a Creative Commons Attribution Non Commercial 4.0 International License

Bablu kumar Jayswal (2026). *भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में वैचारिक ध्रुवीकरण और संस्थागत वर्चस्व: पुरुषोत्तम दास टंडन चुनाव (1950) एवं नेहरू-पटेल द्वैध शासन का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन International Journal of Multidisciplinary Research & Reviews, 5(3), 1-14.*

जब परिणामों की घोषणा हुई, तो वे नेहरूवादी खेमे के लिए एक बड़ा राजनीतिक झटका थे:

उम्मीदवार	प्राप्त मत	प्रतिशत (%)	समर्थन का मुख्य आधार
पुरुषोत्तम दास टंडन	1,306	~50.1%	पटेल गुट, उत्तर भारत की PCCs, रूढ़िवादी समूह
जे.बी. कृपलानी	1,092	~41.9%	नेहरू समर्थक, समाजवादी झुकाव वाले प्रतिनिधि
शंकरराव देव	202	~7.7%	दक्षिण भारत और महाराष्ट्र के कुछ स्वतंत्र गुट

परिणामों की व्याख्या: पटेल की सांगठनिक जीत

टंडन की जीत का मुख्य कारण सरदार पटेल का सूक्ष्म प्रबंधन (Micro-management) था। राजमोहन गांधी (1991) तर्क देते हैं कि पटेल ने टंडन को इसलिए समर्थन दिया क्योंकि वे नेहरू को यह दिखाना चाहते थे कि पार्टी की शक्ति का केंद्र अभी भी संगठन के पास है, न कि केवल प्रधानमंत्री कार्यालय (PMO) के पास। टंडन की जीत ने यह सिद्ध कर दिया कि तत्कालीन कांग्रेस में नेहरू की लोकप्रियता महान थी, लेकिन सांगठनिक स्वीकार्यता के मामले में पटेल का कोई सानी नहीं था।

विद्वान माइकल ब्रेचर ने इस परिणाम को नेहरू के नेतृत्व पर एक "गंभीर सांगठनिक तमाचा→ बताया, जिसने कांग्रेस के भीतर सत्ता के संतुलन को पूरी तरह से हिला दिया था (Brecher, 1959)।

परिणामों का तात्कालिक प्रभाव और नेहरू की प्रतिक्रिया: एक 'नैतिक वीटो' का प्रयोग

पुरुषोत्तम दास टंडन की जीत ने कांग्रेस के भीतर एक अभूतपूर्व गतिरोध पैदा कर दिया। नेहरू के लिए यह केवल एक चुनावी हार नहीं थी, बल्कि उनकी विचारधारा और नेतृत्व की स्वीकार्यता पर एक गहरी चोट थी।

नेहरू की वैचारिक असुरक्षा और इस्तीफे का संकट: टंडन की जीत के तुरंत बाद, नेहरू ने अपने सहयोगियों और सरदार पटेल को यह स्पष्ट कर दिया कि वे एक ऐसी कार्यसमिति (CWC) के साथ काम नहीं कर सकते जिसका नेतृत्व टंडन जैसे "सांप्रदायिक और पुरातनपंथी→ विचारों वाला व्यक्ति कर रहा हो। एस. गोपाल (1979) के अनुसार, नेहरू ने इसे अपने सिद्धांतों से समझौता करने के बजाय 'पद त्यागने' की धमकी के रूप में इस्तेमाल किया। उन्होंने तर्क दिया कि यदि पार्टी टंडन की नीतियों का समर्थन करती है, तो प्रधानमंत्री के रूप में उनकी वैश्विक और घरेलू छवि धूमिल होगी।

नासिक अधिवेशन (सितंबर 1950): शक्ति का पुनर्संतुलन

नासिक अधिवेशन में नेहरू ने एक अत्यंत चतुर रणनीतिक चाल चली। उन्होंने अपनी नीतियों (धर्मनिरपेक्षता, विदेश नीति और आर्थिक नियोजन) पर अलग-अलग प्रस्ताव पेश किए और पार्टी से इन पर स्पष्ट समर्थन मांगा।

The work is licensed under a Creative Commons Attribution Non Commercial 4.0 International License

Bablu kumar Jayswal (2026). *भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में वैचारिक ध्रुवीकरण और संस्थागत वर्चस्व: पुरुषोत्तम दास टंडन चुनाव (1950) एवं नेहरू-पटेल द्वैध शासन का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन International Journal of Multidisciplinary Research & Reviews, 5(3), 1-14.*

- **नेहरू का तर्क:** "अगर आप मुझे नेता मानते हैं, तो आपको मेरी नीतियों को बिना किसी शर्त के स्वीकार करना होगा।→
- **टंडन की स्थिति:** नवनिर्वाचित अध्यक्ष होने के बावजूद टंडन को मंच पर नेहरू की नीतियों का समर्थन करना पड़ा, क्योंकि वे पार्टी में विभाजन (Split) का आरोप अपने सिर नहीं लेना चाहते थे (Das, 1969)।

सरकार बनाम संगठन: संवैधानिक गतिरोध

इस चुनाव का तात्कालिक प्रभाव यह हुआ कि 'सरकार' (नेहरू) और 'संगठन' (टंडन-पटेल) के बीच संवाद लगभग बंद हो गया। टंडन ने अपनी नई कार्यसमिति में नेहरू के करीबी सहयोगियों (जैसे रफ़ी अहमद किदवई) को बाहर रखा, जिसके जवाब में नेहरू ने कार्यसमिति में शामिल होने से इनकार कर दिया। ग्रैनविले ऑस्टिन (1999) लिखते हैं कि यह भारतीय संसदीय प्रणाली का सबसे नाज़ुक दौर था, जहाँ पार्टी और सरकार एक-दूसरे के विरुद्ध युद्धरत थे।

'दो सूर्यों' का अंत और नेहरू का निर्विवाद उदय

दिसंबर 1950 में सरदार पटेल के निधन ने इस शक्ति-संघर्ष का समीकरण पूरी तरह बदल दिया। पटेल के बिना टंडन सांगठनिक रूप से अनाथ हो गए। नेहरू ने इस अवसर का लाभ उठाते हुए पार्टी पर दबाव बढ़ा दिया। अंततः, 1951 में नेहरू ने कार्यसमिति से इस्तीफा दे दिया, जिससे पूरी पार्टी में हड़कंप मच गया। टंडन के पास बहुमत हो सकता था, लेकिन उनके पास नेहरू जैसी 'जन-स्वीकार्यता' नहीं थी। पार्टी को टूटने से बचाने के लिए टंडन को सितंबर 1951 में इस्तीफा देना पड़ा।

ऐतिहासिक प्रभाव: 'नेहरूवादी युग' का सूत्रपात

इस प्रतिक्रिया का परिणाम यह हुआ कि नेहरू स्वयं कांग्रेस अध्यक्ष बन गए। इसने भारत में एक नई परंपरा को जन्म दिया: "प्रधानमंत्री ही पार्टी का सर्वोच्च नेता होगा।→ इसने उस 'द्वैध शासन' को समाप्त कर दिया जिसने 1947-1950 तक कांग्रेस को संतुलित किया था।

निष्कर्षात्मक विश्लेषण तालिका (तात्कालिक प्रभाव)

घटना	तात्कालिक प्रभाव	दीर्घकालिक परिणाम
नेहरू का असहयोग	पार्टी के भीतर प्रशासनिक लकवा	प्रधानमंत्री पद की गरिमा और शक्ति में वृद्धि
पटेल का निधन	टंडन गुट का कमजोर पड़ना	सामूहिक नेतृत्व (Collective Leadership) का अंत
टंडन का इस्तीफा	नेहरू का निर्विवाद वर्चस्व	कांग्रेस का एक वैचारिक 'छतरी दल' से 'नेहरूवादी दल' में रूपांतरण

नेहरू-पटेल द्वंद्व और सांगठनिक संकट (1950-51)

नेहरू और पटेल के बीच का संघर्ष केवल दो व्यक्तियों का टकराव नहीं था, बल्कि वह "पार्टी बनाम सरकार→ की सर्वोच्चता का एक शास्त्रीय उदाहरण था। 1950 में यह द्वंद्व अपने चरम पर पहुँचा और इसने कांग्रेस को विभाजन के कगार पर ला खड़ा किया।

The work is licensed under a Creative Commons Attribution Non Commercial 4.0 International License

Bablu kumar Jayswal (2026). *भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में वैचारिक ध्रुवीकरण और संस्थागत वर्चस्व: पुरुषोत्तम दास टंडन चुनाव (1950) एवं नेहरू-पटेल द्वैध शासन का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन International Journal of Multidisciplinary Research & Reviews, 5(3), 1-14.*

द्वैध शासन की प्रकृति: स्वतंत्रता के शुरुआती तीन वर्षों में कांग्रेस का संचालन नेहरू (प्रधानमंत्री) और पटेल (उप-प्रधानमंत्री एवं पार्टी मैनेजर) के एक 'कार्यकारी समझौते' के तहत हो रहा था। माइकल ब्रेचर ने इसे "समानांतर शक्ति संरचना→ कहा है। नेहरू जहाँ नीति-निर्माता और राष्ट्र का चेहरा थे, वहीं पटेल पार्टी मशीनरी और प्रशासन की रीढ़ थे। यह संकट तब गहराया जब पटेल ने पार्टी संगठन को नेहरू की 'समाजवादी नीतियों' पर अंकुश लगाने के लिए इस्तेमाल करना शुरू किया (Brecher, 1959)।

सांगठनिक प्रतिरोध का उत्कर्ष: टंडन का चयन

पुरुषोत्तम दास टंडन का निर्वाचन इस 'सांगठनिक संकट' की सबसे बड़ी अभिव्यक्ति थी। पटेल का मानना था कि नेहरू की धर्मनिरपेक्ष नीतियां (जैसे लियाकत-नेहरू समझौता) हिंदू हितों की अनदेखी कर रही हैं। टंडन को अध्यक्ष बनाकर पटेल ने नेहरू को यह संदेश दिया कि "पार्टी की सहमति के बिना प्रधानमंत्री का व्यक्तिगत एजेंडा नहीं चलेगा→ (Das, 1969)।यह कांग्रेस के भीतर एक प्रकार का 'संवैधानिक गतिरोध' था, जहाँ सरकार एक दिशा में जाना चाहती थी और संगठन दूसरी दिशा में।

पटेल का निधन: शक्ति का शून्य (December 15, 1950)

15 दिसंबर 1950 को सरदार पटेल के निधन ने इस सांगठनिक समीकरण को मौलिक रूप से बदल दिया। पटेल के जाने से 'दक्षिणपंथी' और 'पारंपरिक राष्ट्रवाद' गुट ने अपना सबसे बड़ा रणनीतिकार खो दिया। टंडन, जो अब तक पटेल के संरक्षण में कार्य कर रहे थे, अचानक नेहरू की विराट जन-लोकप्रियता के सामने अकेले पड़ गए। राजमोहन गांधी (1991) लिखते हैं कि "पटेल की मृत्यु के साथ ही कांग्रेस के भीतर वह संतुलन समाप्त हो गया जिसने नेहरू की शक्तियों पर अंकुश लगा रखा था।→

नेहरू का 'अंतिम प्रहार': इस्तीफा और वर्चस्व

1951 की शुरुआत में संकट तब और गहरा गया जब टंडन ने नेहरू के करीबियों को कांग्रेस कार्यसमिति (CWC) से बाहर कर दिया। नेहरू ने यहाँ 'राजनीतिक ब्लैकमेल' (Political Leverage) की रणनीति अपनाई। उन्होंने यह घोषणा की कि "पार्टी और सरकार के बीच एकता के अभाव में वे प्रधानमंत्री पद पर नहीं रह सकते।→

- **रणनीतिक इस्तीफा:** अगस्त 1951 में नेहरू ने CWC से इस्तीफा दे दिया।
- **परिणाम:** पार्टी के भीतर हड़कंप मच गया क्योंकि 1952 के पहले आम चुनाव सिर पर थे। नेहरू के बिना कांग्रेस का चुनाव जीतना असंभव माना जा रहा था।
- **टंडन का पतन:** सांगठनिक बहुमत होने के बावजूद टंडन नैतिक रूप से हार गए। उन्हें सितंबर 1951 में त्यागपत्र देना पड़ा (Kochanek, 1968)।

इस संकट का समाधान इस रूप में हुआ कि नेहरू स्वयं कांग्रेस अध्यक्ष बन गए। इसने कांग्रेस के चरित्र को हमेशा के लिए बदल दिया:

1. शक्ति का केंद्रीकरण: 'प्रधानमंत्री' और 'पार्टी अध्यक्ष' का पद एक ही व्यक्ति में समाहित हो गया।
2. लोकतांत्रिक संकुचन: पार्टी के भीतर असहमति (Dissent) की जगह 'निष्ठा' ने ले ली।

The work is licensed under a Creative Commons Attribution Non Commercial 4.0 International License

Bablu kumar Jayswal (2026). *भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में वैचारिक ध्रुवीकरण और संस्थागत वर्चस्व: पुरुषोत्तम दास टंडन चुनाव (1950) एवं नेहरू-पटेल द्वैध शासन का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन International Journal of Multidisciplinary Research & Reviews, 5(3), 1-14.*

3. नेहरूवादी युग: कांग्रेस एक 'समावेशी मंच' से बदलकर 'नेहरूवादी विचारधारा' की वाहक बन गई (Guha, 2007)।

प्रमुख घटनाक्रम की समयरेखा (Timeline of Crisis)

कालखंड	घटना	प्रभाव
अगस्त 1950	टंडन की जीत	संगठन का नेहरू पर हावी होना
दिसंबर 1950	पटेल का निधन	नेहरू विरोधी गुट का नेतृत्वविहीन होना
अगस्त 1951	नेहरू का इस्तीफा	पार्टी के भीतर अस्तित्व का संकट
सितंबर 1951	टंडन का इस्तीफा	नेहरू का निर्विवाद वर्चस्व स्थापित

विश्लेषण: संस्थागत वर्चस्व का संक्रमण
'संगठन बनाम सरकार' संवैधानिक और राजनीतिक प्रतिमान

कांग्रेस के भीतर टंडन और नेहरू का संघर्ष केवल एक व्यक्तिगत सत्ता संघर्ष नहीं था, बल्कि यह इस मूलभूत प्रश्न का उत्तर खोजने का प्रयास था कि "लोकतंत्र में अंतिम शक्ति किसके पास है चुनी हुई सरकार के पास या उस राजनीतिक दल के पास जिसने उसे सत्ता में पहुँचाया?" (Kochanek, 1968)।

वेस्टमिंस्टर मॉडल बनाम पार्टी सुप्रीमेसी: नेहरू ब्रिटिश संसदीय परंपरा (Westminster Model) के प्रबल पक्षधर थे, जहाँ प्रधानमंत्री को अपनी कैबिनेट और नीति-निर्माण में पूर्ण स्वायत्तता प्राप्त होती है। उनके अनुसार, प्रधानमंत्री संसद के प्रति जवाबदेह है, न कि पार्टी के पदाधिकारियों के प्रति। इसके विपरीत, पुरुषोत्तम दास टंडन और पटेल का गुट 'पार्टी-सुप्रीमेसी' के मॉडल में विश्वास रखता था, जहाँ पार्टी का अध्यक्ष सरकार की नीतियों का दिशा-निर्देशक होता है (Brecher, 1959)।

संस्थागत नियंत्रण का क्रमिक क्षरण: टंडन के निर्वाचन ने शुरू में यह संकेत दिया कि पार्टी संगठन अभी भी स्वायत्त है। किंतु, नेहरू की 'नैतिक वीटो' (इस्तीफे की धमकी) ने इस संस्थागत स्वायत्तता को चुनौती दी। ग्रैनविले ऑस्टिन (1999) तर्क देते हैं कि नेहरू ने यह सिद्ध कर दिया कि बिना 'जन-अपील' वाले सांगठनिक नेता, एक 'करिश्माई राष्ट्रीय नेता' के सामने नहीं टिक सकते। यह संक्रमण सांगठनिक लोकतंत्र से 'नेत्रीय लोकतंत्र' (Leader-centric Democracy) की ओर एक बड़ा बदलाव था।

कार्यसमिति (CWC) का रूपांतरण: अध्ययन से स्पष्ट होता है कि 1950 तक कांग्रेस कार्यसमिति एक 'समानांतर कैबिनेट' के रूप में कार्य करती थी। टंडन के कार्यकाल के दौरान, CWC ने नेहरू की नीतियों पर सवाल उठाकर अपनी इस शक्ति को बनाए रखने का अंतिम प्रयास किया। हालाँकि, नेहरू द्वारा

The work is licensed under a Creative Commons Attribution Non Commercial 4.0 International License

Bablu kumar Jayswal (2026). *भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में वैचारिक ध्रुवीकरण और संस्थागत वर्चस्व: पुरुषोत्तम दास टंडन चुनाव (1950) एवं नेहरू-पटेल द्वैध शासन का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन International Journal of Multidisciplinary Research & Reviews, 5(3), 1-14.*

कार्यसमिति का बहिष्कार करने और अंततः टंडन के इस्तीफे के बाद, CWC प्रधानमंत्री की नीतियों पर 'रबर स्टैम्प' लगाने वाली संस्था बनकर रह गई (Das, 1969)।

संस्थागत शक्ति के संक्रमण का विश्लेषण चार्ट

कारक	संक्रमण पूर्व (1947-1950)	संक्रमण पश्चात (1951 के बाद)
शक्ति का केंद्र	द्वैध शासन (नेहरू + पटेल)	एकाधिकार (केवल नेहरू)
अध्यक्ष की भूमिका	सरकार का मार्गदर्शक/आलोचक	प्रधानमंत्री का सहयोगी/समर्थक
निर्णय प्रक्रिया	सामूहिक और गुटीय विचार-विमर्श	प्रधानमंत्री और उनकी कैबिनेट का वर्चस्व
पार्टी-सरकार संबंध	निरंतर तनाव और संतुलन	सरकार के अधीन संगठन

लोकतांत्रिक वैधता और नेहरूवादी सर्वसम्मति

टंडन प्रकरण का पटाक्षेप केवल एक व्यक्ति के इस्तीफे तक सीमित नहीं था; यह कांग्रेस के भीतर 'लोकतांत्रिक वैधता' के आधार के पुनर्निर्धारण का काल था। इस संक्रमण ने उस 'नेहरूवादी सर्वसम्मति' की नींव रखी, जिसने अगले दो दशकों तक भारतीय राजनीति के चरित्र को परिभाषित किया।

'जन-इच्छा' बनाम 'सांगठनिक बहुमत': नेहरू ने टंडन के विरुद्ध अपनी लड़ाई को "पार्टी के भीतर के लोकतंत्र→ बनाम "राष्ट्र की व्यापक इच्छा→ के रूप में पेश किया। नेहरू का तर्क था कि भले ही टंडन के पास कांग्रेस प्रतिनिधियों (Delegates) का बहुमत हो, लेकिन उनके पास भारतीय जनता का वह व्यापक जनादेश नहीं है जो नेहरू के धर्मनिरपेक्ष और आधुनिक विजन के साथ था। पॉल आर. ब्रास (1990) के अनुसार, नेहरू ने अपनी 'लोकप्रिय वैधता' (Popular Legitimacy) का उपयोग पार्टी के 'सांगठनिक ढांचे' को झुकाने के लिए किया। यह इस बात का प्रमाण था कि भारतीय राजनीति में व्यक्तिगत करिश्मा अब पार्टी मशीनरी से ऊपर हो गया था।

नेहरूवादी सर्वसम्मति का उदय: टंडन के इस्तीफे और नेहरू के अध्यक्ष बनने के बाद, कांग्रेस के भीतर की वैचारिक विविधता एक 'एकल विजन' में सिमटने लगी। जिसे राजनीतिक विश्लेषक रजनी कोठारी (1964) 'कांग्रेस प्रणाली' (The Congress System) कहते हैं, उसकी वास्तविक शुरुआत यहीं से हुई।

- **वैचारिक एकीकरण:** नेहरू ने समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता, गुटनिरपेक्षता और नियोजित विकास को पार्टी का 'आधिकारिक सिद्धांत' बना दिया।

The work is licensed under a Creative Commons Attribution Non Commercial 4.0 International License

Bablu kumar Jayswal (2026). *भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में वैचारिक ध्रुवीकरण और संस्थागत वर्चस्व: पुरुषोत्तम दास टंडन चुनाव (1950) एवं नेहरू-पटेल द्वैध शासन का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन International Journal of Multidisciplinary Research & Reviews, 5(3), 1-14.*

- **विपक्ष का अभाव:** पार्टी के भीतर जो 'दक्षिणपंथी' गुट पटेल और टंडन के साथ था, वह नेतृत्वहीन होकर हाशिए पर चला गया या नेहरू की छत्रछाया में समाहित हो गया।

आंतरिक लोकतंत्र का रूपांतरण: विमर्श से अनुपालन तक

इस संक्रमण का एक नकारात्मक प्रभाव कांग्रेस के आंतरिक लोकतंत्र पर पड़ा। 1950 तक कांग्रेस में खुले विमर्श और विरोध की संस्कृति थी (जैसा कि टंडन चुनाव में दिखा)।किंतु, 1951 के बाद 'विरोध' को 'अनुशासनहीनता' या 'सांप्रदायिकता' के रूप में देखा जाने लगा। माइकल ब्रेचर (1959) तर्क देते हैं कि नेहरू ने अनजाने में एक ऐसी परंपरा शुरू की जहाँ पार्टी अध्यक्ष प्रधानमंत्री का केवल एक 'अधीनस्थ' बनकर रह गया, जिससे पार्टी के भीतर स्वतंत्र सांगठनिक आवाज़ें कमजोर होती गईं।

निष्कर्षपरक विश्लेषण: एक ऐतिहासिक विडंबना

यह एक ऐतिहासिक विडंबना थी कि लोकतंत्र के सबसे बड़े रक्षक नेहरू ने ही पार्टी के भीतर की 'लोकतांत्रिक असहमति' (Dissent) को अपनी नीतियों के लिए बाधक मानकर उसे समाप्त किया। टंडन की विदाई ने सरकार को स्थिरता तो दी, लेकिन पार्टी के भीतर उस सांगठनिक संतुलन को हमेशा के लिए खत्म कर दिया जो पटेल ने बनाया था।

नेहरूवादी सर्वसम्मति के स्तंभ (Key Pillars)

स्तंभ	विवरण	प्रभाव
धर्मनिरपेक्षता	राज्य का धर्म से पूर्ण पृथक्करण	अल्पसंख्यकों का कांग्रेस के प्रति अटूट विश्वास
नियोजित विकास	योजना आयोग के माध्यम से विकास	राज्य का अर्थव्यवस्था पर नियंत्रण
अध्यक्षीय एकीकरण	PM और अध्यक्ष पद का एकीकरण	पार्टी में चुनौतीविहीन नेतृत्व

निष्कर्ष

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के भीतर जवाहरलाल नेहरू और सरदार वल्लभभाई पटेल का वर्चस्व मात्र दो व्यक्तियों का प्रभाव नहीं था, बल्कि वह एक नव-स्वतंत्र राष्ट्र की वैचारिक दिशा निर्धारित करने वाला एक अनिवार्य शक्ति-संतुलन था। पुरुषोत्तम दास टंडन के निर्वाचन और उनके संक्षिप्त कार्यकाल का विश्लेषण यह सिद्ध करता है कि कांग्रेस के भीतर 'विविधता' और 'विरोध' की जड़ें कितनी गहरी थीं।

द्वैध शासन से एकाधिकार तक का संक्रमण:

The work is licensed under a Creative Commons Attribution Non Commercial 4.0 International License

Bablu kumar Jayswal (2026). *भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में वैचारिक ध्रुवीकरण और संस्थागत वर्चस्व: पुरुषोत्तम दास टंडन चुनाव (1950) एवं नेहरू-पटेल द्वैध शासन का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन International Journal of Multidisciplinary Research & Reviews, 5(3), 1-14.*

शोध का निष्कर्ष यह है कि 1947 से 1950 तक कांग्रेस एक 'द्वि-ध्रुवीय नेतृत्व' के अधीन थी। पटेल संगठन के यथार्थवाद का प्रतिनिधित्व करते थे, जबकि नेहरू सरकार के आदर्शवाद का। टंडन की जीत इस 'सांगठनिक यथार्थवाद' की अंतिम बड़ी सफलता थी। किंतु, पटेल के निधन ने उस संस्थागत सुरक्षा कवच को हटा दिया जिसने नेहरू की शक्तियों को संतुलित कर रखा था। टंडन का इस्तीफा केवल एक व्यक्ति की विदाई नहीं थी, बल्कि कांग्रेस के भीतर उस 'पारंपरिक-दक्षिणपंथी' विकल्प का अंत था जो नेहरूवादी नीतियों को चुनौती दे सकता था।

प्रधानमंत्री पद की सर्वोच्चता का संस्थागतकरण:
इस पूरे घटनाक्रम ने भारतीय संसदीय प्रणाली में एक महत्वपूर्ण परंपरा स्थापित की: "लोकतांत्रिक ढांचे में जन-प्रतिनिधित्व (सरकार) सांगठनिक नियंत्रण (पार्टी) से ऊपर है।→ नेहरू ने यह स्पष्ट कर दिया कि एक आधुनिक लोकतंत्र में प्रधानमंत्री को पार्टी अध्यक्ष के अधीन नहीं रखा जा सकता। इस वर्चस्व की लड़ाई ने कांग्रेस को एक 'कैच-ऑल' पार्टी (जहाँ सभी विचारधाराएं समान थीं) से बदलकर एक ऐसी पार्टी बना दिया जो 'नेहरूवादी सर्वसम्मति' के इर्द-गिर्द केंद्रित थी।
आंतरिक लोकतंत्र पर प्रभाव:

अकादमिक दृष्टि से, यह निष्कर्ष निकलता है कि जहाँ नेहरू की जीत ने भारत को एक स्थिर, धर्मनिरपेक्ष और समाजवादी दिशा दी, वहीं इसने पार्टी के **आंतरिक लोकतंत्र** को स्थायी रूप से संकुचित कर दिया। 'सामूहिक नेतृत्व' का स्थान 'सर्वोच्च नेतृत्व' ने ले लिया, जिससे भविष्य में कांग्रेस के भीतर सांगठनिक स्तर पर स्वतंत्र नेतृत्व का उभरना कठिन हो गया।

संक्षेप में, नेहरू-पटेल वर्चस्व का यह दौर भारतीय लोकतंत्र की प्रयोगशाला था। टंडन प्रकरण ने यह सिद्ध किया कि किसी भी राजनीतिक दल के स्थायित्व के लिए 'संगठन' और 'लोकप्रिय नेतृत्व' के बीच सामंजस्य आवश्यक है। 1951 के बाद कांग्रेस पूरी तरह से 'नेहरू के सांचे' में ढल गई, जिसने आधुनिक भारत के निर्माण में तो योगदान दिया, किंतु पार्टी के भीतर उस 'स्वस्थ विमर्श' को सीमित कर दिया जो पटेल और टंडन के दौर की विशेषता थी।

■ AUTHOR(S) CONTRIBUTION

The writers affirm that they have no connections to, or engagement with, any group or body that provides financial or non-financial assistance for the topics or resources covered in this Manuscript.

■ CONFLICTS OF INTEREST

The authors declared no potential conflicts of interest with respect to the research, authorship, And/or publication of this article.

■ PLAGIARISM POLICY

All authors declare that any kind of violation of plagiarism, copyright and ethical matters will take care by all authors. Journal and editors are not liable for aforesaid matters.

The work is licensed under a Creative Commons Attribution Non Commercial 4.0 International License

Bablu kumar Jayswal (2026). *भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में वैचारिक ध्रुवीकरण और संस्थागत वर्चस्व: पुरुषोत्तम दास टंडन चुनाव (1950) एवं नेहरू-पटेल द्वैध शासन का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन International Journal of Multidisciplinary Research & Reviews, 5(3), 1-14.*

SOURCES OF FUNDING

The authors received no financial aid to support for the research.

संदर्भ सूची (References)

[1] Austin, G. (1999). *Working a Democratic Constitution: The Indian Experience*. Oxford University Press. (पृष्ठ: 140–165). [इसमें संगठन और सरकार के संवैधानिक संघर्ष का विवरण है।]

[2] Brass, P. R. (1990). *The Politics of India Since Independence*. Cambridge University Press. (पृष्ठ: 32–45). [नेहरूवादी सर्वसम्मति और वैचारिक ध्रुवीकरण पर चर्चा।]

[3] Brecher, M. (1959). *Nehru: A Political Biography*. Oxford University Press. (पृष्ठ: 389–435). [टंडन चुनाव और नेहरू के 'नैतिक वीटो' का विस्तृत विश्लेषण।]

[4] Chandra, B., Mukherjee, M., & Mukherjee, A. (2000). *India After Independence*. Penguin Books. (पृष्ठ: 131–148). [पटेल के निधन के बाद के शक्ति संक्रमण पर प्रकाश।]

[5] Das, D. (1969). *India from Curzon to Nehru and After*. Collins. (पृष्ठ: 280–305). [नेहरू-पटेल पत्राचार और टंडन की जीत के आंतरिक विवरण।]

[6] Frankel, F. R. (2005). India's Political Economy, 1947–2004. Oxford University Press. (पृष्ठ: 82–110). [नेहरू और पटेल के आर्थिक दृष्टिकोणों का टकराव।]

[7] Gandhi, R. (1991). *Patel: A Life*. Navajivan Publishing House. (पृष्ठ: 512–540). [सरदार पटेल की सांगठनिक मशीनरी और टंडन के समर्थन की पृष्ठभूमि।]

[8] Gopal, S. (1979). *Jawaharlal Nehru: A Biography (Vol. 2: 1947–1956)*. Harvard University Press. (पृष्ठ: 92–108). [नेहरू की टंडन प्रकरण पर आधिकारिक प्रतिक्रिया और इस्तीफे का संकट।]

[9] Guha, R. (2007). *India After Gandhi: The History of the World's Largest Democracy*. Macmillan. (पृष्ठ: 125–150). [1950 के दशक के राजनीतिक बदलावों का ऐतिहासिक विहंगम दृश्य।]

[10] Kochanek, S. A. (1968). *The Congress Party of India: The Dynamics of One-Party Democracy*. Princeton University Press. (पृष्ठ: 27–53). [संगठन बनाम कार्यकारी शाखा के बीच सर्वोच्चता के संघर्ष का व्यवस्थित विश्लेषण।]

[11] Kothari, R. (1964). "The Congress 'System' in India". *Asian Survey*, 4(12), 1161–1173. [कांग्रेस के भीतर गुटीय संतुलन और नेहरू के वर्चस्व का सैद्धांतिक ढांचा।]

The work is licensed under a Creative Commons Attribution Non Commercial 4.0 International License

Bablu kumar Jayswal (2026). *भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में वैचारिक ध्रुवीकरण और संस्थागत वर्चस्व: पुरुषोत्तम दास टंडन चुनाव (1950) एवं नेहरू-पटेल द्वैध शासन का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन International Journal of Multidisciplinary Research & Reviews, 5(3), 1-14.*

[12] Morris-Jones, W. H. (1971). *The Government and Politics of India*. Hutchinson University Library. (पृष्ठ: 65–88). [भारतीय संसदीय प्रणाली में प्रधानमंत्री की स्थिति का विकास।]

[13] Nehru, J. (1993). *Selected Works of Jawaharlal Nehru (Second Series)*, Vol. 15. Jawaharlal Nehru Memorial Fund/Oxford University Press. (पृष्ठ: 154–210). [नेहरू द्वारा पटेल और टंडन को लिखे गए प्राथमिक पत्रों का संग्रह।]

[14] Sisson, R. (1972). *The Congress Party in Rajasthan: Political Integration and Institution Building in an Indian State*. University of California Press. (पृष्ठ: 95–112). [प्रदेश कांग्रेस कमेटियों पर पटेल के नियंत्रण का क्षेत्रीय अध्ययन।]

[15] Weiner, M. (1967). *Party Building in a New Nation: The Indian National Congress*. University of Chicago Press. (पृष्ठ: 45–60). [कांग्रेस के सांगठनिक ढांचे के विकास पर विश्लेषण।]

[16] Zavos, J. (2000). *The Emergence of Hindu Nationalism in India*. Oxford University Press. (पृष्ठ: 180–195). [पुरुषोत्तम दास टंडन की हिंदूवादी छवि और वैचारिक संघर्ष का विश्लेषण।]

The work is licensed under a Creative Commons Attribution Non Commercial 4.0 International License